राजस्थान की धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराएँ

देवर्षि कलानाथ शास्त्री

(राष्ट्रपति सम्मानित), प्रधान सम्पादक ''भारती''संस्कृत मासिक
पीठाचार्य, भाषामीमांसा एवं शास्त्रशोध पीठ - विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर
पूर्व अध्यक्ष - राजस्थान संस्कृत अकादमी
आधुनिक संस्कृत पीठ - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय
पूर्व निदेशक - संस्कृत शिक्षा एवं भाषा विभाग, राजस्थान सरकार
सदस्य - संस्कृत आयोग, भारत सरकार

यद्यपि राजस्थान के भारत का अभिन्न भू-भाग होने के कारण यहाँ भारतीय संस्कृति का प्रत्यक्षदर्शन कण-कण में होता है और पृथक् से किसी राजस्थानी संस्कृति होने का प्रश्न नहीं उठता, तथापि राजस्थान की कुछ विशिष्ट परंपराएँ भी हैं, जिन्होंने जनजीवन पर अपनी छाप छोड़ी है। यहाँ हम उनका विवरण देने का प्रयत्न करेंगे।

राजस्थान का जनजीवन ऐसी धार्मिक एवं दार्शनिक मान्यताओं और आस्थाओं के बहुरंगी ताने-बाने से गुंथा हुआ है, जो इस भू-भाग के अतीत, सांस्कृतिक इतिहास तथा वीरपूजा की भावनाओं से जन्मी हैं तथा समूचे देश की सांस्कृतिक धारा ने जिन्हें एकीकृत और समन्वित रूप भी प्रदान किया है। यही कारण है, कि यहाँ देश की उस सनातन संस्कृति की धारा भी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है, जो वेदकाल से लेकर मध्यकाल तक की धार्मिक और दार्शनिक आस्था से अनुप्राणित है, जिसमें रामायण और महाभारत के पात्रों, कृष्ण, रामलीला, गीता, भागवत, तीर्थयात्राएँ मोक्ष, गयाश्राद्ध, दान-धर्म आदि के प्रति श्रद्धा समान रूप से अनुस्यूत है। दशहरा-दीवाली, होली जैसे त्यौहारों को प्रमुख माना जाता है, साथ ही इस भूमि की विशिष्ट परम्पराएँ भी उस धारा में आकर उसे विशिष्ट रंग प्रदान करती हैं जो गणगौर, तीज आदि के मेलों में, रामदेव, गोगाजी, तेजाजी आदि स्थानीय लोक-देवताओं के प्रति आस्था में और यहाँ के विशिष्ट रीति-रिवाजों में परिलक्षित होती हैं।

हजारों वर्षों के सांस्कृतिक इतिहास के समन्वित प्रभावों से पनपी इस परम्परा का आकलन सरल नहीं है, किन्तु उसका एक चित्र और परिदृश्य यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। यह चित्र विविध प्रभावों से ढली यहाँ की सामाजिक संस्कृति का स्वरूप भी स्पष्ट कर सकेगा।

धर्मः सांस्कृतिक परिदृश्य

भारत की धार्मिक परम्पराएँ वेदकालीन यज्ञ-याग आदि के कर्मकाण्ड, सोलह संस्कार, चार आश्रम, चार वर्ण, चार पुरुषार्थ आदि मान्यताओं के मूल पर आधारित है, किन्तु उन पर परवर्ती पुराणकालीन संस्कृति का भी विपुल प्रभाव है, जिसमें दस अवतारों की मान्यता, रामलीलाए, तीर्थाटन और गंगा-यमुना के प्रति श्रद्धा ने पर्याप्त योगदान दिया है। साथ ही भक्ति आन्दोलन का गहरा असर है, जिसके कारण रामचरित मानस, वैष्णव भक्ति के आचारों, भक्त कवियों और सन्तों के उपदेशों का दूरगामी प्रभाव यहाँ के जीवन पर दिखायी देता है।

मध्यकाल में यहां निर्गुण भक्ति की ज्ञान शाखा के प्रसार आन्दोलन के फलस्वरूप अनेक सन्त सम्प्रदाय भी पनपेः- जैसे- दादूपंथ, विश्नोई सम्प्रदाय, निरंजनी, लालदासी, रामस्नेही आदि पंथ जो यहां की विशिष्ट देन कहे जा सकते हैं। इनका प्रभाव यहाँ बहुत रहा जैसे परनामी, नानकपंथी, आर्य समाजी, राधास्वामी आदि पंथों की परम्पराएँ तथा वल्लभाचार्य का पुष्टि मार्ग, चैतन्य का गौडीय सम्प्रदाय आदि।

यहाँ केवल हिन्दू ही नहीं, मुसलमान, सिख आदि भी बड़ी संख्या में हैं, जो अपनी-अपनी धार्मिक परम्पराओं का मुक्त और अविच्छिन्न रूप से पालन करते हैं। जैन धर्म की परम्परा यहाँ हजारों वर्षों से चली आ रही है, फल-फूल रही है और उसकी धार्मिक और दार्शनिक परम्पराओं को राजस्थान का योगदान इतिहास में विशेष उल्लेख का पात्र बन गया है।

साथ-साथ पनपती रही इन परम्पराओं ने समूचे जनजीवन पर सम्मिलित प्रभाव डाला हो तथा एक दूसरे की परम्पराओं को आदान-प्रदान द्वारा प्रभावित, समृद्ध और समन्वयात्मक रूप से पुष्ट किया हो । यह स्वाभाविक ही नहीं, अनिवार्य भी है, किन्तु ऐसा आकलन बहुत विस्तार-सापेक्ष है और यहाँ अप्रासंगिक भी। यहां मोटे रूप में इन विभिन्न धार्मिक परम्पराओं व दार्शनिक धाराओं का संकेत ही पर्याप्त होगा।

सर्वमान्य धार्मिक धारणाएँ

सनातनी परम्परा विविध धार्मिक परम्पराओं और मान्यताओं से रची-बसी एक इन्द्रधनुषी सांस्कृतिक परम्परा है जिसमें वेदों और उपनिषदों का प्रभाव तथा ऐसी दार्शनिक आस्थाएँ गहरी पैठी हुई हैं, जैसे :- पुनर्जन्म को मानना, ईश्वर को चराचर में तथा घट-घट में व्याप्त देखना, उसे कभी राम के रूप में, कभी कृष्ण के रूप में तथा गणेश, शिव,

दुर्गा, हनुमान आदि विविध देवी-देवताओं के रूप में पूजना, ओंकार, तुलसी, गौमाता, गंगा आदि के प्रति श्रद्धा। यही समस्त हिन्दू आस्तिकों की समान सांस्कृतिक परम्परा है, जो देश भर में व्याप्त है। राजस्थान में भी यह परम्परा सामान्य रूप से सर्वत्र फैली देखी जा सकती है। यहाँ का सामान्य अभिवादन राम-राम है, जो गाँवों में आज भी प्रचलित है। प्रत्येक शुभकार्य के पहले गणेश पूजना भी इस परम्परा का अंग है। प्रत्येक मकान के द्वार पर गणेश की मूर्ति स्थापित करना इसी का प्रतीक है।

निम्बार्क-संप्रदाय

वैष्णव संप्रदायों में एक प्रमुख संप्रदाय आचार्य निम्बार्क का है, जिसका प्रमुख पीठ भी आज किशनगढ़ (अजमेर जिला) के पास सलेमाबाद नामक ग्राम में स्थित है। अन्य वैष्णव संप्रदायों की भाँति निम्बार्क संप्रदाय का भी प्रमुख प्रसार वृन्दावन में हुआ (मुगलकाल में) जहाँ हरिव्यास-देवाचार्य जी ने संप्रदाय के पीठों का सुनियोजित पुनर्गठन कर बारह शिष्यों को संप्रदाय के प्रसार का कार्य सौंपा। इनके प्रमुख शिष्य परशुराम-देवाचार्य थे जो जयपुर राज्यान्तर्गत नारनौल के समीप गौड ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे और कुछ समय मथुरा के नारद टीला पर साधना कर निम्बार्क संप्रदाय की प्रमुख गद्दी राजस्थान में ले आये।

पुष्कर में कुछ चमत्कारी पीर लोगों को दिग्भ्रान्त करते थे, अतः उन्हें अपने योगबल से परास्त कर वहाँ इस वैष्णव पीठ की स्थापना इन्होंने आवश्यक समझी, ऐसा माना जाता है। तब से (16वीं सदी के आसपास) अजमेर के सलेमाबाद में यह प्रमुख पीठ स्थित है। परशुरामसागर आदि अनेक भक्तिग्रन्थों में परशुराम देवाचार्य ने राजस्थानी मिश्रित हिन्दी में काव्य रचना की और राजस्थान में इस संप्रदाय का प्रसार किया।

वर्तमान में उदयपुर में भी निम्बार्क पीठ है तथा जयपुर आदि नगरों में स्थान.स्थान पर इस संप्रदाय के राधाकृष्ण के मन्दिर हैं। इस संप्रदाय में राधा को कृष्ण की स्वकीया (परिणीता) माना जाता है और युगल स्वरूप की मधुर सेवा की जाती है। समय-समय पर राजस्थान की देशी रियासतों के अनेक राजवंशों ने भी इस संप्रदाय के प्रति अपनी भक्ति प्रकट की।

जयपुर नरेश जगतसिंह ने संवत् 1856 में सलेमाबाद में जाकर आचार्य श्री का आशीर्वाद प्राप्त किया, जिसके फलस्वरूप राजकुमार जयसिंह का जन्म हुआ, अतः इस राजवंश ने उन्नीसवीं सदी में इस संप्रदाय को बहुत प्रश्रय दिया और अनेक मेले आयोजित किये, इसका उल्लेख इतिहास में मिलता है।